Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 11, Issue 1 | May 2023 - October 2023 | pp. 152-157

महिलाएं एवं मानवाधिकार

संगीता कुमारी
सहायक आचार्य, हिन्दी
राजकीय महाविद्यालय, जगतपुरा, जयपुर (राजस्थान)

Research Reinforcement
ISSN 2348-3857

शोध सारांश

जयशंकर प्रसाद—"जीव अनन्त अनश्वर और गतिमान है जो न कभी रुकता है, न कभी नष्ट होता है; इसलिए जीवन जीना बहुत जरूरी है। परन्तु पशुतुल्य जीवन जीना कोई जीवन नहीं है, जीवन तो वह है जिसमें इच्छा, ज्ञान व क्रिया का समन्वय हो जिसमें विषमता की समाप्ति हो और अखण्ड आनन्द की प्राप्ति हो।" अर्थात् सभी के लिए समाज में समान अधिकार और स्वतंत्रता एवं समानता का भाव हो और यहीं सब भाव मानव के अधिकारों के अंतर्गत समाहित हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता हैं कि मानवाधिकार ऐसे अधिकार हैं जो प्रत्येक मनुष्य को केवल मनुष्य होने के अधिकार से ही प्राप्त होते है, भले ही उसकी राष्ट्रीयता, जाति, भाषा, लिंग, सामाजिक और आर्थिक स्थिति कैसी भी हो। मानवाधिकारों का संबंध मानव की स्वतंत्रता, समानता एवं गरिमा के साथ जीवन जीने के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न करने से होता है। मानवाधिकार के द्वारा सामाजिक वातावरण में सौहार्द्र बन्धुता और समरसता की भावना को प्रोत्साहन मिलता है। मानवाधिकार व्यक्ति की प्रकृति में ही निहित है। जिसके अभाव में मानव, मानवीय गरिमा के साथ अपन जीवन यापन नहीं कर सकता। किसी भी उन्नत, सभ्य व विकसित समाज का प्रथम कर्तव्य मानवाधिकारों का संरक्षण करना ही है। किसी भी देश या समाज की प्रगति का एक महत्वपूर्ण मापदण्ड "मानवाधिकारों" को स्वीकारा गया है।

संकेताक्षर—*अवधारणा, संविधान, प्रावधान, अनुच्छेद, अधिकार, मूल अधिकार अधिनियम*

प्रस्तावना

मानवाधिकार वे अधिकार हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव होने के नाते प्राप्त होते हैं, इन अधिकारों का आधार मानव स्वभाव में निहित है।[1]

मानवाधिकार एक व्यापक अवधारणा है जिसे पुरातन काल से देखा, समझा और ग्रहण किया जाता रहा है। मानवाधिकार की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है जितना कि मानव इतिहास। यद्यपि मानवाधिकारों को एक नवीन अवधारणा में भी शामिल माना जाता है तथापि इसका भावार्थ बहुत प्राचीन संस्कृति की 'वसुधैव कुटुम्बकम्' से परिलक्षित होता है। भारतीय संस्कृति सदैव मानव मात्र के प्रति सहिष्णुता और सहानुभूति की रही हैं, जिससे न केवल चर अपितु अचर जगत के प्रति भी हमारा लगाव, सद्भाव और आदर का रहा है। भारत में प्राचीन काल से ही—

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग भवेत्।।"

सिद्धांत की पालना होती रही है। उपर्युक्त सभी विशेषताओं के आधार पर सामान्यतया यह कहा जा सकता है कि वर्तमान में हम जिन्हें मानवाधिकारों के नाम से जानते हैं वे मानव को मानव होने के कारण प्राप्त हैं तथा जिनकी अवधारणा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। मानव अधिकार एक व्यापक अवधारणा है। मानवाधिकारों का अर्थ मानव के सर्वांगीण विकास हेतु आवश्यक वे परिस्थितियाँ है, जिन्हें किसी वैध सत्ता द्वारा मान्यता प्रदान कर दी गई है। मानव अधिकार

में राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एव सांस्कृतिक अधिकार निहित हैं।

मानवाधिकारों का अर्थ व परिभाषा

भारत में प्राचीनकाल से ही मानवाधिकारों के बीज स्रोत हमें धार्मिक और लौकिक दोनों चिन्तन परम्पराओं में मिल जाते है और यह भी कि बीसवीं सदी में सम्यक् रूप से निरूपित होने के बावजूद मनुष्य के अधिकारों को लेकर इतिहास में भी कुछ ऐसा घटित होता है, जो मानवाधिकारों के विकास क्रम को दर्शाता है। भारत में प्राचीन काल से ही अमानवीय व्यवहार के विरूद्ध महात्मा बुद्ध व अशोक जैसे महापुरुषों ने जो आवाज उठाई, उससे प्रेरित होकर मनुष्य जाति में स्वतंत्रता के प्रति अनुराग पैदा हुआ। इन महापुरुषों की आवाज को मध्यकाल में कबीर रैदास, नानकदेव, रामानुज व रामानंद जैसे संतों ने बुलन्द की और लोग अपने अधिकारों के प्रति सजग होने लगे। आधुनिक भारत में राजाराम मोहनराय स्वामी दयानंद सरस्वती, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, ज्योतिराव फुले आदि महापुरुषों ने अपमान व अमानवीयता के परम्परागत विधान पर कठोर प्रहार करके मानव में समानता का भाव जाग्रत करने का प्रयास किया।

मानव परिवार केवल अधिकारों का अबाध उपभोक्ता नहीं है, बल्कि मानवेतर के प्रति उत्तरदायित्व बोध भी उसके मानव होने की कसौटी हैं, इसीलिए भारतीय दृष्टि केवल 'मानव परिवार की बात नहीं करती। वह वसुधा को कुटुम्ब मानती है, जिसमें मानव न केवल शामिल है, बल्कि उत्तरदायीं भी है पूरे कुटुम्ब के प्रति यही है भारतीय संकल्पना।[2] लेकिन मानवाधिकारों की चिन्तन-परम्परा के साथ-साथ उनके व्यावहारिक विकास की प्रक्रिया भी चलती रही है। आधुनिक लोकतांत्रिक राजनीति का विकास मानवाधिकारों का सहयात्री रहा है। मानवाधिकारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करने वाले अधिकांश लोग उस की शुरूआत इंग्लैण्ड के संसदीय लोकतंत्र के विकास के बीज मैग्नाकार्टा से मानते है। दो और ऐसे दस्तावेज है, जिन्होंने लोकतांत्रिक अधिकारों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। जिनमें से एक है 1776 ई. का अमेरिकी स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र और दूसरा है मानव एवं नागरिक के अधिकारों का फ्रांसीसी घोषणा-पत्र।'

यदि अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकारों की बात की जाये तो सर्वप्रथम मानव अधिकार शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अमेरिकन राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने जनवरी 16, 1941 में कांग्रेस को संबोधित अपने प्रसिद्ध संदेश में किया था जिसमें उन्होंने चार मर्मभूत स्वतंत्रताओं पर आधारित विश्व की घोषणा की थी—क. वाक् स्वातंत्र्य, ख. धर्म स्वातंत्र्य, ग. गरीबी से मुक्ति, घ. भय से मुक्ति।

उसके पश्चात् मानव अधिकार पद का प्रयोग अटलांटिक चार्टर में किया गया। तदुपरान्त मानव अधिकार पद का लिखित प्रयोग संयुक्त राष्ट्र चार्टर में किया गया, जिसको द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् सैन फ्रांसिस्को में 25 जून, 1945 को अंगीकृत किया गया था। संयुक्त राष्ट्र संघ की 26 जून, 1945 ईस्वी को हस्ताक्षरित घोषणा मानवाधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर स्वीकृति की दिशा में एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जहाँ से एकजुट होकर संसार के सभी व्यक्ति मानवीय गरिमा समानता एवं विश्व बंधुत्व की दिशा में एक होकर मिलकर कार्य करने का संकल्प लेते हैं।[3]

मानव अधिकारों के निर्माण में पहला ठोस कदम संयुक्त राष्ट्र महासभा ने दिसम्बर 1948 में मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को अंगीकृत करके उठाया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के बाद 1946 ई. में श्रीमती एलीनर रूजवेल्ट की अध्यक्षता में गठित मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट के आधार पर 10 दिसम्बर, 1948 ई. के दिन संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानवाधिकारों के विश्व घोषणा पत्र को स्वीकार किया गया। इस प्रकार मानव अधिकारों को पहचान देने और इन अधिकारों के क्रियान्वयन के लिए किए जाने वाले संघर्ष को सशक्त करने के उद्देश्य से प्रत्येक 10 दिसम्बर को अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार दिवस मनाया जाता है।

मानवाधिकारों की प्रमुख परिभाषाएँ

वाइल्ड, "कुछ विशेष कार्यों के करने की विवेकपूर्ण मांग को अधिकार कहा जाता है।"

बोसांके, "अधिकार वह मांग है जिसे समाज स्वीकार करता है और राज्य लागू करता है।"

लास्की, "अधिकार मानव जीवन की ऐसी परिस्थितियाँ हैं, जिनके बिना सामान्यतया कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकता है।"

आर. जे. विसेंट, "मानव अधिकार वे अधिकार हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव होने के कारण प्राप्त है। इन अधिकारों का आधार मानव स्वभाव में निहित है।"

मेरी रोबिन्सन, "प्रत्येक व्यक्ति को उसकी मौलिक स्वतंत्रताओं की सुरक्षा एवं उसके प्राप्त करने के व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से राष्ट्रीय अथवा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्राप्त अधिकार मानवाधिकार कहलाते हैं।"

डेविड सेलबाई के अनुसार, "मानव अधिकार संसार के प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त है क्योंकि ये स्वयं में मानवीय है, ये पैदा नही किये जा सकते, खरीद या संविदावादी प्रक्रिया से मुक्त होते हैं।"

ए. ए. सईद, "मानव अधिकारों का सम्बन्ध व्यक्ति की गरिमा से है एवं आत्मभाव जो व्यक्तिगत पहचान को रेखांकित करता है तथा मानव समाज को आगे बढ़ाता है।"

मानवाधिकारों के अंतर्गत जो अधिकार प्रदान किए गए उन को निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—1. प्राकृतिक आधार, 2. नैतिक आधार, 3. कानूनी अधिकार, 4. नागरिक आधार, 5. मौलिक अधिकार, 6. आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आधार।

इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय घोषणा के आधार पर निम्न अधिकार समाहित है—

1. वाक् स्वतंत्रता का अधिकार
2. न्यायिक उपचार का अधिकार
3. सरकार में भागीदारी का अधिकार
4. काम का अधिकार
5. स्तरीय जीवन जीने का अधिकार
6. शिक्षा का अधिकार
7. समान काम के लिए समान वेतन का अधिकार
8. सामाजिक सुरक्षा का अधिकार
9. जीवन सुरक्षा एवं स्वतंत्रता का अधिकार
10. मनमाने ढंग से गिरफ्तारी के विरूद्ध अधिकार
11. विचार, विवेक एवं धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार
12. निष्पक्ष, स्वतंत्र एवं न्यायिक सुनवाई का अधिकार
13. शांतिपूर्ण, सभा संगोष्ठी करने तथा संघ बनाने का अधिकार

भारतीय संविधान एवं महिला अधिकार

इस प्रकार मानवाधिकारों का अर्थ, प्रकृति, विशेषताएं तथा प्रमुख मानवाधिकारों का अध्ययन करने के पश्चात् हमें यह भली-भांति ज्ञात हो गया है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की मानवाधिकारों की विश्व घोषणा में यद्यपि किसी भी तरह के भेद को स्वीकार नहीं किया गया। प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान अधिकारों को स्वीकार किया गया है, जिसके अनुसार किसी भी नस्ल, लिंग वर्ग आदि के लिए अलग से किसी व्यवस्था की आवश्यकता नहीं होनी थी। लेकिन समाज में व्याप्त भेदभाव एवं पूर्वाग्रह पूर्ण मानसिकता के कारण महिलाओं के साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार नहीं किया गया। नारी की समाज के विकास में भागीदारी नहीं मानी तथा यह भूल गये कि नारी वह पहलू है जिसके बिना किसी समाज की रचना संभव नहीं । सृष्टि सृजन और मानवीय सभ्यता के विकास में स्त्री-पुरुष दोनों की समान सृजनात्मक भूमिका रही है दोनों एक दूसरे के पूरक है। आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करने वाली नारी को आज भी दोयम दर्जा प्राप्त है। इस पितृसत्तात्मक समाज में वह अनेक यातनाओं का सहती रही है तथा सदियों से अनेक विडम्बनाओं और कुप्रथाओं के बीच जीवन यापन कर रही है।

प्राचीन काल से ही हमारी भारतीय संस्कृति में भी नारी के प्रति जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि कहकर श्रद्धा व्यक्त की गई है, क्योंकि नारी समाज परिवार एवं राष्ट्रोउत्थान में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, तथा नारी के हर रूप को पूजनीय एवं सम्माननीय माना गया है, तभी तो कहा जाता है—

"शक्ति है यह मायालीला जगत को यह ही जनती है
बहिन है, पत्नी है यह ही, सुता भी यह ही बनती है।
ब्रह्मा भी शक्तिहीन होकर नहीं कुछ भी कर सकता है
सृजन भी नहीं, नहीं पालन, नहीं कुछ भी हर सकता है
कहा है—व्यास देव ने यह स्त्रियाँ है सब कुछ जग में
प्रेम-छवि, मान, ज्ञान, गुण, बल भरे हैं, इनकी रग-रग में।"

भिन्न-भिन्न देशकाल एवं परिस्थितियों में महिलाओं की स्थिति, दशा एवं स्वरूप का स्तर भिन्न-भिन्न रहा है। प्राचीनकाल में नारी को त्याग, बलिदान, साहस शक्ति और सेवा की प्रतिमूर्ति माना जाता था। तभी तो मनुस्मृति में लिखा है—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्त्रफलाः कियाः।।"

अर्थात् जहां नारियों की पूजा होती है वहां देवता निवास करते है। मनुस्मृति का यह चिर-परिचित श्लोक इस बात का संकेत देता है कि प्राचीन काल भारतीय महिलाओं का स्वर्णिम काल

था। परन्तु कालान्तर में महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आ गया। समाज की पितृ सत्तात्मक व्यवस्था के कारण महिलाओं की स्थिति में बदलाव आया। सभी सामाजिक संरचनाएं, व्यवस्थाएं, परम्पराएं, रूढ़ियां एवं रीति रिवाज आदि सभी मानवकृत होकर भी मानव विभेदक है। इन्होंने समाजीकरण व संस्कारगत व्यवहार व मूल्यों के आधार पर स्त्री-पुरुष के मध्य विभेदीकरण की एक लकीर खींच दी है। वैदिक काल में जो नारी पूजनीय मानी गयी, मध्यकाल तक आते-आते उसे हेय और निम्न स्तर का लग गया।[4]

परन्तु आज बौद्धिक और औद्योगिक क्रांति के इस युग में महिलाओं की महत्ता स्वीकृत की जाने लगी है। महिलाओं की स्थिति में और अधिक सुधार करने के उद्देश्य से द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् विश्व में स्त्री अधिकारों के लिए विचार मंथन किया गया।

मानवाधिकारों की विश्व घोषणा में, यद्यपि महिला अधिकारों का अलग से कोई उल्लेख नहीं किया गया है, लेकिन पिछले सात दशकों में महिला अधिकारों को लेकर जागरूकता सभी वर्गों में बढ़ी है और यहां तक कहा जाने लगा है कि महिला अधिकार ही मानवाधिकार हैं, जिस का परिणाम यह हुआ है कि राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक एवं जीवन की अन्य सार्वजनिक क्रियाशीलताओं में महिलाओं की उपस्थिति एवं सक्रियता का निस्संदेह विस्तार हुआ है। पूर्ण अधिकारों की प्राप्ति शांतिमय राजनैतिक परिवेश में ही संभव है, जिसमें राष्ट्रीय महिला आयोग की भूमिका महत्वपूर्ण है।" स्त्री-पुरुषों के बीच पूर्ण कानूनी समानता हो, स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता, शिक्षा और रोजगार के समान अवसर तथा सामाजिक-राजनैतिक सक्रियताओं में स्त्रियों की भागीदारी अनिवार्य व बुनियादी शर्त है। पूर्ण अधिकारों की प्राप्ति शांतिपूर्ण राजनीतिक परिवेश में ही संभव है। जिनके राज्य महिला आयोग की भूमिका महत्वपूर्ण है।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् विश्व में स्त्री अधिकारों के लिए विचार मंथन किया गया तथा अंतरराष्ट्रीय पटल पर सर्वप्रथम स्वीकृति की दिशा में एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जहां से एकजुट होकर सभी व्यक्ति मानवीय महिला समानता एवं विश्व बंधुत्व की दिशा में एकत्र होकर मिलकर कार्य संकल्प लेते है।

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में स्त्री-पुरुष समानता का प्रावधान किया गया। महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव, शोषण व दमन को समाप्त करने के उद्देश्य से तथा महिलाओं की स्थिति को और अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए वर्ष 1975 ई. से 1984 ई. को अंतरराष्ट्रीय महिला दशक घोषित किया गया। वर्ष 1986 ई. में महिलाओं के विकास के लिए यूनिफेम की स्थापना हुई, जिसका मूल प्रयोजन महिलाओं की स्थिति में सुधार करना है।

महिलाओं के विकास एवं महिला अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए विश्व महिला-सम्मेलनों का आयोजन भी किया गया। पहला विश्व महिला सम्मेलन 1975 ई. में मैक्सिको में, दूसरा 1980 ई. में कोपेनहेगन में तीसरा 1985 ई. में नैरोबी में तथा चौथा 1995 ई. में बीजिंग में आयोजित हुए।

भारतीय संविधान में मूल अधिकारों के संदर्भ में महिला अधिकारों के लिए प्रावधान

हमारा संविधान हमारे देश की अत्यन्त महत्वपूर्ण विरासत हैं। भारतीय संविधान द्वारा महिलाओं को बहुत से संवैधानिक एवं विधिक अधिकार प्रदान किए गए हैं। इन अधिकारों के साथ-साथ इन का उचित क्रियान्वयन हो, इस हेतु महिलाओं को उत्पीड़न से बचाने के लिए विभिन्न आयोगों की स्थापना भी की गई है। महिलाओं की स्थिति को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले प्रमुख महिला अधिकार निम्नलिखित है—

अनु. 14—भारतीय संविधान के अनु. 14 के अनुसार, "भारत राज्य क्षेत्र के किसी भी नागरिक को विधि के समक्ष समता अथवा विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जाएगा। समानता से तात्पर्य है कि स्त्री व पुरुष में किसी भी प्रकार का लिंग भेद नहीं होगा।"

अनु. 15—भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 के अनुसार, "राज्य में केवल धर्म, वंश, जाति, लिंग व अन्य के आधार पर नागरिकों के मध्य कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा। संविधान में यह स्पष्ट है कि पुरुष और महिलाओं को समान अधिकार प्रदान किए गए हैं।"

अनु. 19—इस अनुच्छेद के अनुसार स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान किया गया ताकि नागरिक स्वतंत्रतापूर्वक भारत राज्य के क्षेत्र में आवागमन कर सके। इस प्रकार ऐसी स्थिति में महिलाओं को किसी भी अधिकार से वंचित करना मौलिक अधिकारों का उल्लंघन माना जाएगा।

अनु. 23 व 24—अनु. 23 व 24 के अनुसार, "महिलाओं के विरूद्ध होने वाले शोषण को नारी के मान-सम्मान के विपरीत मानते हुए उनकी खरीद-फरोख्त वेश्यावृति आदि को दंडनीय अपराध की श्रेणी में रखा गया है।"

अनु. 51—प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह ऐसी प्रथाओं का त्याग करें, जो महिलाओं के सम्मान के विरूद्ध हो। संविधान के नीति निदेशक तत्वों में महिलाओं के अधिकार सुनिश्चित किए गए हैं। अनु. 325 एवं 326 के अंतर्गत निर्वाचक नामावली में महिलाओं और पुरुषों को समान रूप से मत देने और चुने जाने का अधिकार है।

विभिन्न अधिनियमों के अन्तर्गत महिला अधिकार

भारतीय संविधान में मूल अधिकारों के संदर्भ में महिला मानवाधिकारों को मूल अधिकारों के साथ जोड़ा गया है तथा महिलाओं के लिए विस्तृत अधिकारों की विवेचना की गई है—

1. सती प्रथा निवारण अधिनियम, 1987—इस अधिनियम के अंतर्गत सती कर्म करने के लिए कारावास और जुर्माना दोनों की सजा का प्रावधान है।

2. दहेज निवारण अधिनियम, 1961 (संशोधित 1986)—इस अधिनियम के अंतर्गत दहेज लेने और देने के लिए दंड की व्यवस्था की गई है।

3. अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम 1956 (संशोधित 1986)—इस अधिनियम के अंतर्गत व्यवस्था है कि संदिग्ध अथवा अपराधी महिला से पूछताछ, तलाशने एवं गिरफ्तारी केवल महिला पुलिस या महिला सामाजिक कार्यकर्ता के द्वारा की जाएगी।

4. विशेष विवाह अधिनियम, 1954—इस अधिनियम के अंतर्गत महिलाओं को पैतृक संपति में उत्तराधिकारी बनाया गया है। हिन्दू विवाह अधिनियम, 1954 महिलाओं को भरण-पोषण का अधिकार प्रदान करता है।

5. स्त्री अशिष्टरूपण (प्रतिबंध) अधिनियम, 1986—इस अधिनियम के अंतर्गत किसी भी महिला को इस प्रकार से चित्रित नहीं किया जाएगा जिससे उसकी सार्वजनिक नैतिकता को आघात पहुँचे, इस अधिनियम में फिल्म सेंसर बोर्ड के गठन का प्रावधान किया गया है, जो ऐसी फिल्मों पर रोक लगाएगा, जिन में महिलाओं की मर्यादा भंग होती है।

6. समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976—इस अधिनियम के अंतर्गत समान कार्य हेतु महिलाओं को भी पुरुषों के समान पारिश्रमिक देने का अधिकार हैं।

7. 73 व 74वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1993—इस अधिनियम के अंतर्गत महिलाओं को पंचायतों एवं स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं में एक तिहाई आरक्षण का प्रावधान है। भारतीय अपराध संहिता भी महिलाओं को सुरक्षात्मक उपाय प्रदान करता है। इसके तहत दण्ड प्रक्रिया संहिता 1960, भारतीय दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 एवं भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1972 समाहित है। महिला आयोग, महिला थाना एवं महिला अदालतें भी महिला अधिकारों की अभिवृद्धि एवं संरक्षण की दिशा में कार्यरत हैं। इस प्रकार महिला अधिकारों के लिए अनेक कानूनी प्रावधान किए गए हैं, जिन का उल्लंघन होने पर वह मानवाधिकार आयोग, महिला आयोग और न्यायालय की शरण में जा सकती है। स्त्री-पुरुषों के बीच पूर्ण कानूनी समानता हो, स्त्रियों को आर्थिक स्वतंत्रता, शिक्षा और रोजगार के समान अवसर उपलब्ध हो तथा सामाजिक, राजनीतिक सक्रियताओं में स्त्रियों की भागीदारी अनिवार्य बुनियादी शर्त है।6 यद्यपि इन सब के कारण महिलाओं को अपने विकास के लिए अधिक अवसर उपलब्ध हो रहे हैं और एक सीमा तक इस से उन्हें होने वाला लाभ भी प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है तथा पहले की तुलना में सार्वजनिक कार्यों में महिलाओं की उपस्थिति एवं सक्रियता तथा उनकी स्थिति में बढ़ोतरी हुई है, किन्तु अभी स्थिति भी संतोषजनक नहीं है। महिला अधिकारों के संरक्षण का उत्तरदायित्व केवल कानून का राज्य का ही नहीं वरन सभी मनुष्य जाति, परिवारों और समाज का भी है। जब तक हमारी मानसिकता में बदलाव नहीं आता है तब तक कानूनी प्रावधानों के बावजूद बुनियादी परिवर्तन की संभावना बहुत कम रहती है। पिछले दशक से मध्यम वर्गीय विस्तार और एकल परिवारों के बढ़ने से इस नयी 'भारतीय नारी' का आविर्भाव हुआ है। और इस बदलाव का क्षेत्र बढ़ता ही जा रहा है। इसी कारण आज महिला सामाजिक प्रतिबन्धों पुरानी पीढ़ी की रूढ़ियों को तोड़ रही है।[7]

निष्कर्ष

महिला मानवाधिकारों की रक्षार्थ मानवाधिकार आयोग को और अधिक सशक्त बनाना होगा। महिलाओं के कल्याण के लिए गठित महिला आयोग को और अधिक शक्तियाँ प्रदान की जाएं तथा महिलाओं के संबंध में समाज को संवेदनशील

बनाने के लिए विविध कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए जिससे एक नवीन समाज की रचना हो। महिला मानवाधिकारों की व्यावहारिक रूप से परिणति करने के लिए समाज के हर वर्ग, हर जाति, हर धर्म व समुदाय को कंधे से कंधा मिलाकर चलना होगा तभी हम गाँधीजी के समभाव के सपने को साकार कर सकते हैं। अतः हम कह सकते हैं। महिला अधिकार आवश्यकता नहीं अनिवार्यता है। आधी जनसंख्या को सम्मान और प्रतिष्ठा से जीने की आजादी और बराबरी का हक दिए बिना समाज में सुधार लाना असंभव होगा। तभी वे कहते हैं- स्त्रियों के अधिकारों के सवाल पर मैं किसी तरह का समझौता नहीं कर सकता। मेरी राय में उन पर ऐसा कोई कानूनी प्रतिबंध नहीं लगाना चाहिए, जो पुरुषों पर न लगाया गया हो। स्त्री और पुरुष में किसी तरह का भेदभाव नहीं करना चाहिए उनके साथ पूर्ण समानता का व्यवहार होना चाहिए।[8]

संदर्भ सूची

1. राय, अरुण, भारत का राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग गठन, कार्य एवं भावी परिदृश्य, पृ.सं. 11
2. विश्व भारती शान्ति निकेतन में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत बीज-वक्तव्य
3. बसु, डी.डी., भारतीय संविधान, पृ.सं. 44
4. गुप्ता, पंकज, मानवाधिकार एवं महिलाएँ, साहित्यागार, जयपुर, 2014
5. राष्ट्रीय महिला आयोग व नारी, ज्योति प्रकाशन, जयपुर, पृ.सं. 58
6. मिल, जॉन एस्टुअर्ट, प्रगति सेना द्वारा अनुदित-स्त्रियों की पराधीनता, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं. 89
7. श्री निवास, एम.एन., सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया, पृ.सं. 21
8. गाँधी, महात्मा, यंग इंडिया, अक्टूबर 17, 1929